

प्राचीन भारत में कृषि व्यवस्था के कतिपय पक्ष (प्रारम्भिक काल से 600 ई० तक)

डॉ० अजिता ओझा
73ई, ओम गायत्री नगर,
इलाहाबाद-211 004

भूमिकर्षण और बीजारोपण द्वारा किसी भी प्रकार की फसल उत्पादन-प्रक्रिया को कृषि की संज्ञा दी जाती है।¹ भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व ही पशुपालन एवं कृषि का विकास हो गया था। जिस प्रकार जंगली पशुओं को पालतू बनाया गया उसी प्रकार वन्य फसलों को कृषि-जन्य फसल बनाये जाने का अनुमान किया जा सकता है। संभवतः नव पाषाण युग में गेहूँ तथा जंगली फसलों को कृषि योग्य बनाया गया। भारत में सर्वप्रथम बलूचिस्तान में बेलन नदी के किनारे पर स्थित मेहरगढ़ के उत्खनन से मिला है। जिस स्तर तक उत्खनन हुआ है वहाँ से ई० पू० 5000 के आसपास के कृषि जन्य गेहूँ एवं जौ के बीजों के प्रमाण मिले हैं। इस स्तर के नीचे अभी भी निक्षेप है जिसका उत्खनन नहीं हुआ है। अतः अनुमान किया जाता है कि यहाँ ई०पू० सातवीं आठवीं सहस्राब्दी में कृषि कर्म का आरम्भ हो गया था। इसी प्रकार राजस्थान में आठवीं या सातवीं सहस्राब्दी में कृषि का साक्ष्य मिलता है। कश्मीर में ई० पू० 2500 के लगभग गेहूँ तथा जौ की खेती होती थी। उत्तर प्रदेश में बेलन घाटी में कोलडिहवा से वन्य एवं कृषिजन्य दोनों प्रकार के चावल का साक्ष्य मिला है। इसका समय ई०पू० सातवीं सहस्राब्दी माना गया है।²

उपरोक्त साक्ष्य हमें कृषि कर्म के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान नहीं देते परन्तु इतना स्पष्ट है कि ई० पू० आठवीं सहस्राब्दी तक विश्व में और ई०पू० सातवीं सहस्राब्दी तक भारत में कृषि का विकास अवश्य हो गया था।³ इन कालों की संस्कृतियाँ हड़प्पा संस्कृति के पहले की हैं। हड़प्पा संस्कृति के बहुत पहले ही इसी सभ्यता के क्षेत्रों में कृषि का विकास हो चुका था। कुछ स्थानों पर हल चलाने के चिन्ह मिले हैं, और कुछ बस्तियों में अन्न इकट्ठा करने वाले बर्तन एवं स्थान भी मिले हैं। दक्षिण भारत के लोग भी नवपाषाण युग के अन्त तक कुलथी, उड़द एवं रागी की उपज करने लगे थे। हड़प्पाकाल में मिली फसलों के अवशेषों में नौ की पहचान की गई है— चावल (गुजरात एवं राजस्थान), जौ की दो किस्में, गेहूँ की तीन किस्में, कपास खजूर, तरबूज, मटर और ब्रासिका जुंसी। गेहूँ और जौ बरसात के बाद बोया जाता था और मार्च या अप्रैल में काटा जाता था। बाढ़ के साथ बारीक मिट्टी तट पर जमा हो जाती थी जिसमें इनकी खेती की जाती थी। संभवतः इसके लिये हल या

सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। कपास बरसात के पहले बोई जाती थी। इसके खेतों को चारों ओर से घेर लिया जाता था जिससे अन्दर अधिक पानी न रहे। अन्न के बड़े भण्डारों से प्रतीत होता है कि इनकी उपज अधिक मात्रा में होती थी। हड़प्पा संस्कृति एवं ऋग्वैदिक संस्कृति के अन्तराल में अनेकों स्थानीय संस्कृतियों के प्रमाण मिलते हैं जिनमें कृषि कार्य किया जाता था।⁴

वैदिक काल से कृषि व्यवस्था तथा अन्य विषयों के समबन्ध में लिखित प्रमाण मिलते थे। पूरा वैदिक साहित्य कृषि से सम्बन्धित शब्दों से भरा पड़ा है, आर्यों को कृषि का ज्ञान ईरान में ही हो गया था। अवेस्ता में 'करेश,' 'हत्थ' एवं 'यवो', शब्दों का प्रयोग किया गया है जो वैदिक शब्द 'कृष', 'सस्य' एवं 'यव' के रूपान्तरण हैं।⁵ किन्तु पूर्व वैदिक काल में आर्यों का जीवन यायावर कबीलों का ही था। वे चारागाहों की खोज में ईरान होते हुए भारत में आये थे। उन्हें यहाँ के निवासियों से अनेकों युद्ध करने पड़े। यही नहीं तो उनमें आपस में युद्ध हुआ जिसका उल्लेख दासराज युद्ध में हुआ है। इन अन्तर्जातीय एवं जातीय युद्धों का कारण चारागाहों पर स्वामित्व स्थापित करना एवं पशुधन में वृद्धि करना था। ऋग्वेद के अनेकों मंत्र पशुओं से सम्बन्धित हैं। गायों की गवेषणा के लिये 'गविष्टि' शब्द का प्रयोग हुआ था जो बाद में युद्ध का पर्यायवाची बन गया।⁶ पशु ही सम्पत्ति के मुख्य अंग एवं विनिमय तथा दान के साधन थे। इस समय भूमि दान का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु पशुओं के दान के अनेको प्रकरण हैं। पशुओं का हरण एक गंभीर समस्या थी इसीलिये उन्हें पणिओं से युद्ध करना पड़ा था। पशुओं का चारण सामूहिक रूप से किया जाता था। पशुपालन की अपेक्षा कृषि नगण्य प्रतीत होती थी। ऋग्वेद में केवल 24 मंत्रों में कृषि का उल्लेख है। इनमें भी अधिकतर को क्षेपक माना गया है। फसलों में 'यव' का उल्लेख है, किन्तु अन्य कृषि कर्मों का नहीं। 'कृष्टि' शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है, पर लोगों के अर्थ में।⁷ इस काल में समाज में विभाजन का भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु उत्तर वैदिक काल तक आर्यों ने अपने लिये स्थाई आवास बना लिये थे। उनका यायावरी जीवन समाप्त हो गया था क्योंकि अब तक उन्होंने यहाँ के निवासियों—दस्युओं, असुरों—को पराजित कर उनमें अधिकतर को अपना दास बना लिया था। स्वयं आर्यों के समाज में अब ब्राह्मण, राजन्य एवं वैश्यों के वर्ग बनवाये थे जिनमें चौथे वर्ण के रूप में दासों को शूद्र के रूप में वर्णव्यवस्था में समाहित कर लिया गया था। परन्तु आरम्भ में इनमें ऊँच—नीच या किसी प्रकार की अपात्रता का भाव नहीं था। कर्म एवं गुण के आधार पर एक ही परिवार के सदस्य पृथक—पृथक वर्णों के कार्य कर सकते थे। स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल तक आर्यों का मुख्य पेशा कृषि हो गया था। उत्तर वैदिक काल में ही लोहे का प्रयोग हुआ जिससे युद्धों के साथ ही कृषि कर्म में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। समाज में स्थायित्व आ जाने पर राजतन्त्रों की स्थापना होने लगी। पहले राजा केवल कबीले

का प्रधान था, अब वह राजा या भूपति हो गया। इस प्रकार कृषि में परिवर्तन होने से समाज में भी परिवर्तन हुआ।

कुछ विद्वानों का मत है कि ऋग्वैदिक काल में ही कृषि का विकास हो गया था, किन्तु अधिकतर इतिहासकार इससे सहमत नहीं हैं। उन्होंने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों को क्षेपक माना है। पर उत्तर वैदिक काल के सम्बन्ध में विशेष मतभेद नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में जुताई के सम्बन्ध में कर्मकाण्डों का एक स्वतंत्र अध्याय है। वैदिक ग्रन्थों में जंगल काटने, भूमि जोतने, बीज बोने, फसल काटने, मंडाई करने ओसाने आदि का सविस्तार विवेचन किया गया है।⁸ ऋग्वेद में केवल यव और धान्य का उल्लेख है। किन्तु अथर्ववेद एवं यजुर्वेद में अनेकों फसलों का वर्णन है। गेहूँ का उल्लेख ऋग्वेद के अतिरिक्त सभी संहिताओं में है। इस काल में बड़े हलों का जिक्र है जिन्हें खींचने के लिये अनेकों बैलों का प्रयोग करना पड़ता था। दातृ एवं सृणि के अवशेष तो अतरंजीखेड़ा में उत्खनन से भी प्राप्त हुये हैं। अतरंजीखेड़ा से जौ, चावल एवं गेहूँ के तथा हस्तिनापुर के गन्ने के अवशेष प्राप्त हुये हैं।

वैदिक साहित्य में तीन प्रकार की भूमि का विवरण मिलता है:

- (1) वास्तु (आवास योग्य भूमि)
- (2) क्षेत्र (कृषि योग्य भूमि)
- (3) चारागाह

ऋग्वेद के एक सूक्त में गृह स्वामी अपनी समृद्धि एवं सुरक्षा के लिये प्रार्थना करता है। एक अन्य सूक्त में जुआरी अपना सर्वस्व हार कर दूसरे के मकान में शरण लेता है। इनसे सिद्ध होता है कि मकान निजी सम्पत्ति थे। छांदोग्य उपनिषद् में भी मकान का वर्णन निजी सम्पत्ति के रूप में किया गया है। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि चारागाहों पर पूरे समुदाय को समिलित अधिकार होता था। कृषि योग्य भूमि को 'क्षेत्र' कहा जाता था। पाणिनी⁹ ने फसलों के नाम पर क्षेत्रों का विभाजन किया है:

वेहेम—ब्रीहि का खेत

शालीय— (जड़हन का खेत)

पव्य— (जौ का खेत)

षष्टिक्य— (साढ़ी का खेत)

तिल-तैलीन- (तिल का खेत)

माण्य-माषीण- (उड़द का खेत)

उभय-औमीन- (अलसी का खेत)

पाणिनी ने कृषि के अयोग्य भूमि का ऊषर (ऊसर) कहा है। जुती हुई भूमि को सीत्य, हल्य आदि नाम दिये गये थे। चारागाह को 'ब्रज' और 'गोचर' कहा जाता था।

जैन ग्रन्थों में क्षेत्र का विभाजन दो प्रकारों में किया गया था¹⁰-

(1) सेतु- (जिसकी सिंचाई कृत्रिम साधनों से होती थी।)

(2) केतु- (जिसकी सिंचाई वर्षा पर निर्भर थी।)

नारद स्मृति में बताया गया है कि जिस भूमि में एक वर्ष तक खेती न की गई हो वह 'अर्द्धखिल' है, जिसमें तीन वर्षों तक खेती न हो वह 'खिल' हैं¹¹ और जिसमें पाँच वर्षों से खेती न हो वह 'जंगल' के समान हैं। खिल के साथ ही अप्रहत भूमि का उल्लेख मिलता है। संभवतः इसका अर्थ है कि वह भूमि जिस पर कभी खेती न हुई हो। 'अप्रदा' भूमि वह भूमि है जिसे किसी को न दिया गया हो।¹²

गुप्त कालीन ग्रन्थ अमरकोश¹³ में अधोलिखित बारह प्रकार की भूमियों का वर्णन है-

(1) उर्वरा (उपजाऊ भूमि)

(2) ऊषर (ऊसर भूमि)

(3) मरु (रेगिस्तान)

(4) अप्रहत (जिस पर खेती नहीं होती)

(5) शाद्वल (घास का मैदान)

(6) पंकिल (कीचड़ की भूमि)

(7) जल से भरी भूमि

(8) कच्छ (पानी के निकट की भूमि)

(9) शर्करा (कंकड़ युक्त भूमि)

(10) शर्करावती (रेतीली भूमि)

(11) नदी मातृक (नदी से खींची जाने वाली भूमि)

(12) देव मातृक (बरसात से खींची जाने वाली भूमि)

भूमि के स्वामित्व¹⁴ का प्रश्न अब भी विवाद का विषय है। स्मिथ, शामशास्त्री, हॉपकिन्स, बूहलर आदि का मत है कि भूमि पर राजा का स्वामित्व होता था। मेन के अनुसार भूमि पर ग्रामवासियों का सामूहिक अधिकार होता था। बेडेन-पावेल, जायसवाल, आंयगर आदि ने भूमि पर व्यक्तिगत स्वत्व स्वीकार किया है। संभवतः आर्यों के आगमन काल में भूमि पर कबीले का सम्मिलित स्वत्व होता था। पर कृषि व्यवस्था के स्थाई स्वरूप ग्रहण करने पर व्यक्ति एवं राजा दोनों का स्वत्व माना जाने लगा। फिर भी भारत के अनेक भागों में बहुत बाद तक सामुदायिक स्वामित्व का प्रमाण होता था। स्ट्रैबों के अनुसार पंजाब के कुछ परिवार मिल कर खेती करते थे। बंगाल के पाँचवीं-छठीं शताब्दी के ताम्र-लेखों से पता चलता है कि भूमि का विक्रय करने से जो आय होती थी उसका छठाँ भाग राज्य को एवं पाँच भाग सभा को मिलता था। इससे सिद्ध होता है कि ग्रामसभा भूमि की स्वामिनी थी। महाभारत के अनुसार प्राचीन कुरु प्रदेश में किसी व्यक्ति की अपनी भूमि नहीं होती थी। कुछ जातकों में भी सामुदायिक सम्पत्ति का उल्लेख है। गाँव के चारागाहों पर सम्मिलित स्वत्व होता था। मनु के अनुसार गाँव के चारों ओर 100 धनुष और कौटिल्य के अनुसार 800 अंगुल भूमि सामूहिक होती है। पर यह स्थिति सर्वत्र एवं सभी कालों में नहीं थी।¹⁵

राजतन्त्र के सुदृढ़ होने पर राजाओं के अधिकार में भी वृद्धि हुई और यह माना जाने लगा कि राजा अपने राज्य की सम्पूर्ण भूमि का स्वामी है। आपस्तम्ब एवं मनु का मत है कि भूगर्भ से निकली सम्पत्ति पर राजा का अधिकार होता है।¹⁶ अर्थशास्त्र के अनुसार राजा भूमि एवं जल दोनों का स्वामी होता है। डियोडोरस एवं स्ट्रैबों ने भी सभी भूमि पर राजा के स्वामित्व का उल्लेख किया है। महाभारत में राजा को समस्त भूमि का स्वामी माना गया है। गौतम का मत है कि ब्राह्मण के अतिरिक्त राजा का सभी वस्तुओं पर अधिकार होता है। मिलिन्दपह्न में लिखा है कि राजा नगरों, बन्दरगाहों और खानों का स्वामी होता है।

किन्तु इन तथ्यों से राजा का भूमि स्वामित्व सिद्ध नहीं होता। राजा सैद्धान्तिक रूप से भूपति है क्योंकि वह भू-राजस्व प्राप्त करता है। पर व्यावहारिक रूप से भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता था। कौटिल्य ने लिखा है कि जो व्यक्ति अपने खेतों में कृषि न करे राजा उसके खेतों पर अधिकार कर ले। इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि राजा ही वास्तव में स्वामी था। इससे केवल उस व्यवस्था का ज्ञान होता है कि कृषक अपनी भूमि की

उपेक्षा न करें। अर्थशास्त्र में ही दो प्रकार की भूमि में अन्तर किया गया है। प्रथम प्रकार की भूमि राजा की अपनी भूमि होती थी जिस पर कृषि अधीक्षक, श्रमिकों या किसानों द्वारा खेती करवाता था। इस भूमि से होने वाली आय को कौटिल्य ने 'सीता' कहा है। दूसरे प्रकार की भूमि किसानों की होती थी जिससे राजा मालगुजारी (भू-राजस्व) प्राप्त करता था। इसे 'भाग' शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है।¹⁷ इससे व्यक्ति का स्वत्व सिद्ध होता है। नारद का मत है कि गृहस्थ का मकान और खेत जीवन यापन के साधन हैं। अतः राजा को इन्हें नहीं लेना चाहिए। खाने तथा जंगल सदा ही राजा के अधिकार में होते हैं। वास्तव में राजा भूराजस्व लेता था, कृषि व्यवस्था का प्रबन्ध करता था तथा जो गृहपति निःसन्तान मृत्यु को प्राप्त हो जाता था उसकी भूमि का स्वामी हो जाता था। इन सबसे यह सिद्ध नहीं होता कि व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं था। श्रेडर, मैकडानल, घोषाल आदि का भी यही मत है कि भूखण्डों के स्वामी व्यक्ति ही होते थे, राजा नहीं। वैदिक साहित्य में अपाला के पिता के खेत का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में भूमि बेचने का विरोध किया गया है जिससे व्यक्तिगत अधिकार सिद्ध होता है। बौद्ध साहित्य में 'खेत्तपति', 'वत्थुपति' शब्दों से भी व्यक्तिगत अधिकार सिद्ध होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कब्जा (भोग) और अधिकार-पत्र में अन्तर किया गया है।¹⁸ भूमि के स्वामित्व के लिये आगमपूर्वक पत्र का होना आवश्यक था। नारद एवं बृहस्पति के अनुसार जिस भूमि पर किसी व्यक्ति का तीस वर्ष तक अधिकार हो वह उसका स्वामी हो जाता है।¹⁹ मीमांसक शबरस्वामी ने भी व्यक्तिगत स्वामित्व का समर्थन किया है। गौतम एवं नारद ने उन विधियों का वर्णन किया है जिनके द्वारा कोई व्यक्ति भूमि का स्वत्व अर्जित कर सकता है।

संदर्भ :

1. कृषि के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'एग्रीकल्चर' दो शब्दों का योग है एक तो 'एग्रो' (क्षेत्र/खेत) और दूसरा 'कल्चर' (कर्षण/जुताई), दृष्टव्य, ए0पी0 ओझा, 'ए फ्रेश अप्रोच टु एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट इन अली इण्डिया', एग्रीकल्चर ऐण्ड ऐग्रेरियन सोसाइटी इन इण्डिया : चेन्जिंग पर्सपेक्टिव, सम्पा0 प्रदीप कुमार केसरवानी, इलाहाबाद, 2016, पृ0 290; ए0पी0 ओझा, 'एग्रीकल्चर ऐज रिफ्लेक्टेड इन द धर्मशास्त्र ट्रेडिशन', हिस्ट्री ऑव एग्रीकल्चर इन इण्डिया, सम्पा0 लल्लनजी गोपाल एवं वी0सी0 श्रीवास्तव, नई दिल्ली, 2008, पृ0 469
2. वही, पृ0 290
3. वही, पृ0 290

4. एन0पी0 बन्धोपाध्याय, इकनॉमिक लाइफ ऐण्ड प्रोग्रेस इन ऐंशियेंट इण्डिया, भाग-1, कलकत्ता, पृ0 126; जे0 मार्शल, मोहनजोदडो एण्ड इण्डस सिविलाइजेशन, लंदन, 1931; एस0आर0 राव, “ऐग्रीकल्चर इन इण्डस सिविलाइजेशन”
5. वैदिक इण्डेक्स, भाग-2, पृ0 208, 488
6. वही, भाग-1, पृ0 247
7. वही, पृ0 203
8. ऋग्वेद, 10.23; 10.101.34; 10.48.7; 10.94.13
9. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारतवर्ष
10. अंगविज्जा, वाराणसी
11. नारद स्मृति, 1.87, 91
12. यू0एन0 घोषाल, ऐग्रेरियन सिस्टम इन ऐंशिएंट इण्डिया, अध्याय-1
13. अमरकोश, 9.13-14; बृहत्संहिता, 8.8-9
14. यू0एन0 घोषाल, पूर्वोधृत, पृ0 65; अजिता ओझा, भारतीय समाज के सामाजार्थिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य, इलाहाबाद, 2016, पृ0 123-124
15. ए0पी0 ओझा, ‘ऐग्रीकल्चर ऐज रिफ्लेक्टेड इन द धर्मशास्त्र ट्रेडिशन’, हिस्ट्री ऑव ऐग्रीकल्चर इन इण्डिया, सम्पा0 लल्लनजी गोपाल एवं वी0सी0 श्रीवास्तव, नई दिल्ली, 2008, पृ0 469
16. मनुस्मृति, 8.39
17. यू0एन0 घोषाल, हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ0 29-34
18. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.29
19. नारद स्मृति, 1.87, 91